[Conference-Composition of Colours :December,2014] ISSN- 2350-0530
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v2.i3SE.2014.3625

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

भारतीय सामाजिक परम्परा में प्राकृतिक रंग

डॉ. मीनाक्षी स्वामी
प्राध्यापक – समाजषास्त्र
शा. महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, किला भवन, इंदौर

रामधारी सिंह दिनकर का कथन है "भारतीय सामाजिक जीवन परम्पराओं से सम्पृक्त है।

सिंधु सभ्यता में बर्तनों पर हुई रंग–बिरंगी चित्रकारी हमारी परम्परा में चित्रकला के महत्व का प्रमाण है। लाल और पीले रंगों से रंगी आकृतियाँ भारतीय सामाजिक परम्पराओं का प्रतीक है।

समाज के भीतर धड़कती सजृन की चेतना रंगों के माध्यम से अनुप्रमाणित उद्वेगों की अभिव्यक्ति है। प्रकृति से प्राप्त रंगों से चित्रांकन का प्रागेतिहासिक काल में हुए। जैसे काले, लाल, सफेद, पीले, नीले आदि। लोक कला का संबंध भावनाओं और परम्पराओं पर आधारित है। यह जन सामान्य की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। देवीय संकेतो व परम्परागत विष्वासों पर आधारित रंग संयोजन सामाजिक परम्पराओं में अभिव्यक्त होता है।

सामाजिक परम्पराओं पर आधारित कला का विकास घर–आंगन, ग्रामों में, अषिक्षित समाज में धार्मिक संस्कृति के अंतर्गत हुआ। लोक कला को किसी आश्रय या प्रलोभन की आवष्यकता नहीं है। लोक कला का संबंध किसी दिखावे से नहीं मानव मन की सहज अभिव्यक्ति से है।

सामाजिक परम्पराओं और लोक कला का गहरा संबंध है। प्रागेतिहासिक काल की चित्रकला में जादू–टोना, टोटका इत्यादि व्यक्त होते है। प्राचीन गुफाओं में स्वास्तिक चिन्ह भी मिले है। वे सामाजिक परम्पराओं व मान्यताओं के प्रतीक है। भारत में धरती को माता कहा गया है। इस सांस्कृतिक परम्परा के अन्तर्गत धरती माता को श्रद्धा से अलंकृत किया जाता है।

गुजराती सामाजिक परम्परा में साथिया, राजस्थान में मांडना, महाराष्ट्र में रंगोली, उत्तर प्रदेष में चौक चूरना, बिहार में अहपन, बंगाल में अल्पना और गढ़वाल में आपना नाम से जाना जाता है। इन सब में विभिन्न प्राकृतिक रंगों से भूमि पर घर के आंगन में द्वार पर या पूजा स्थल पर परम्परा घर–घर में तथा भारत के कोने–कोने में होती है। यद्यपि इन परम्पराओं की आकृति व रंग संयोजन में विभिन्न प्रांतों में भिन्नता दिखाई देती है। यह लोक कला धर्म प्रेरित होने से इसमें श्रद्धा का भाव प्रमुख है। अतः इसमें शुभ माने जाने वाले रंगों का ही प्रयोग किया जाता है। अलौकिक शक्ति के प्रति समर्पित यह कला भारतीय आध्यात्मिक परम्परा की परिचायक है।

भारतीय सामाजिक परम्पराओं में लोक कला जनजीवन में गुंथी हुई है। अनेक उत्सव होली, दीवाली, दषहरा, विवाह, मुंडन, विषेष व्रत, उपवास, पूजा तथा जलसों में लोक कला का विषेष महत्व है। इन अवसरों पर प्राकृतिक रंगों का प्रयोग करते हुए मंगलमय आकृतियाँ बनाई जाती है। जैसे महाराष्ट्र की रंगोली में सफेद पत्थर का चूरा करके उसमें विविध रंग मिलाए जाते है। यह मिश्रण भूमि पर कलात्मक तरीके से बुरक कर मंगल आकृतियाँ बनाई जाती है। राजस्थान में खड़िया में लाल, भूरे या हरे रंग को मिलाकर दीवारों व चौक में मांडने बनाए जाते है। बंगाल में शुभ अवसरों पर बनाई जाने वाली अल्पना में सफेद पाउडर से रेखांकन करके गीले और सूखे प्राकृतिक रंगों को गोंद से चिपकाया जाता है। उत्तर प्रदेष में लोक कला सांझी गोबर से दीवार पर चित्रित की जाती है। इसे रंग बिरंगी फूलों की पत्तियों से सजाया जाता है। बिहार की लोक कला अध्ययन में घरेलू सामग्री से तैयार प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता है इनमें चावल, आटा, हल्दी आदि का प्रयोग किया जाता है। ये चित्र पवित्र धार्मिक भावना तथा सादगी से ओत–प्रोत होते है। इन चित्रों में पषु–पक्षी बहुत आदर भाव से चित्रित होते है। इसका मूल कारण कृषि आधारित अर्थ व्यवस्था है।

भारतीय सामाजिक परम्परा में विवाह आदि शुभ अवसरों पर मिट्टी के कलषों पर रंग बिरंगी चित्रकारी के द्वारा उल्लास का वातावरण तैयार किया जाता है। धार्मिक क्रियाकलापों से जुड़ी रंग बिरंगी चित्रकारी समूचे वातावरण को सौंदर्य प्रदान करती है।

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

प्राचीन अभिलेखों से भी ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वज भूमि और दीवारों को प्राकृतिक रंगों से चित्रित करने में विष्वास रखते है। सौंदर्य रचना की यह परम्परा भारतीय समाज में आज भी रची–बसी है।

उत्तर कर्नाटक के षिमोंग जिले कें लोक कला में प्राकृतिक रंगों के प्रयोग का अनुपम उदाहरण देखने को मिलता है। लाल रंग के विषेष पत्थर को पीसकर लाल रंग, चावल को जलाकर, पानी में भिगोकर काला रंग बनाया जाता है। मिट्टी और चावल से सफेद रंग तथा गुर्गी के बीज से पीला रंग बनाया जाता है। इन रंगों का प्रयोग चित्तर नामक कला में किया जाता है। रंगों को स्थायी औश्र चमकदार बनाने के लिए वृक्षों से प्राप्त गोंद का प्रयोग किया जाता है। रंगों को घोलने के लिए नारियल के खोपरे के आधे भाग का प्रयोग किया जाता है।

इसी प्रकार तंजावुर कलाकृतियाँ का मूल फलक कटहल की लकड़ी का बनाया जाता है। इस पर सफेद सूती कपड़े को जमाकर चूना पत्थर का लेप किया जाता है। इस पर रंग बिरंगे रत्न और पत्थर, ईमली की गोंद से चिपकाया जाता है।

बिहार की लोक कला मधुबनी में वनस्पति रंगों का प्रयोग किया जाता है। रंगों को स्थायी और चमकदार बनाने के लिए उन्हें बकरी के दूध में घोला जाता है। ज्वार को जलाकर यदि उसकी कालिख को गोबर के साथ मिलाकर काला रंग, हल्दी और चूने का बरगद की पत्तियों में दूध मिलाकर पीला रंग तैयार किया जाता है। पलाष या टेसू के फूल से नारंगी, कुसुंभ के फूलों से लाल और बेल की पत्तियों से हरा रंग बनाया जाता है।

इस प्रकार भारतीय सामाजिक परम्परा मैं रंगों के संयोजन में धर्म, अध्यात्म व प्रकृति के प्रति सम्मान व्यक्त किया जाता है।

संदर्भ –

1 *रामधारी सिंह दिनकर – "संस्कृति के चार अध्याय" श्यामाचरण दुबे*
2 *रामचंद्र शुक्ल – कला प्रसंग*